International Journal of Information Movement Vol.6 Issue XII (April 2022)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 1-9

'पतंजलि प्रणीत चित्तवृत्ति निरोध के उपायों की विवेचना'

डॉ0 दीपक कुमार
विभागाध्यक्ष एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, योग विभाग
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढवाल विश्वविद्यालय
पोखरा, पौडी गढवाल, उत्तराखण्ड

सारांश महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में योग की दार्शनिकता को बहुत ही सरल ढंग से प्रस्तुत किया है। महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में योग की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि चित्त की वृत्तियों को रोक लेना ही योग है। यही योग दर्शन का मूल आधार है। मनुष्य का मन चंचल होने के कारण वह इस सांसारिक मोह माया में भटकता रहता है। जिससे वृत्तियां एकाग्र नहीं हो पाती है। इन्हीं वृत्तियों को एकाग्र करने के लिए महर्षि पतंजलि ने अभ्यास–वैराग्य, क्रिया योग और अष्टांग योग, ये तीन मार्ग बताए है। इन तीन मार्गों के आधार पर साधकों को क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणी में रखा है। इन सभी मार्गों के पालन से साधक ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है अर्थात् साधक स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर हो जाता है। वह भौतिकवादी दृष्टिकोण को समाप्त कर आत्म तत्व को प्राप्त करता है जिससे साधक कैवल्य को प्राप्त कर लेता है। अतः साधकों को उपर्युक्त कहे गए चित्तवृत्ति के उपायों का श्रद्धा पूर्वक सांगोपान करना चाहिए।

मुख्य शब्द– अभ्यास–वैराग्य, क्रियायोग और अष्टांग योग।

पतंजलि योग सूत्र के आदि प्रवर्तक महर्षि पतंजलि है। याज्ञववक्य स्मृति के अनुसार योगशास्त्र के आद्यवक्ता हिरण्यगर्भ हैं। इससे सिद्ध होता है कि पतंजलि योग के प्रवर्तक न होकर अनुसंधानकर्ता, प्रचारक संशोधक हैं। इस दर्शन को आधुनिक समय में पातंजयोगसूत्र के नाम से जाना जाता है, जिसमें महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। स्पष्टतः कह सकते हैं कि जब चित्त विविध विषयों में अपने प्रवृति रूप कार्यो को न करते हुए शांत, व्यवस्थित, निश्चल और एकाग्र स्थिति में होता है, उस अवस्था का नाम अथवा ऐसा करने की प्रक्रिया का नाम योग है।[1]

1.0 चित्तवृत्तिनिरोध के उपाय –

चित्तवृत्तिनिरोध कैसे किया जाये? महर्षि पतंजलि ने योग साधकों की योग्यता का ध्यान रखते हुए वृत्तिनिरोध के अनेक उपायों का उल्लेख योगसूत्र में किया है। महर्षि पतंजलि ने योग साधकों को तीन श्रेणियों में रखा है – उत्तम, मध्यम एवं अधमक। महर्षि पतंजलि ने समाहित चित्त वाले उत्तम अधिकारियों के लिए अभ्यास और वैराग्य का उपदेश किया है। उत्तम अधिकारी वे होते है जो पूर्व जन्मों में जप, तप, समाधि आदि के द्वारा क्लेशों को दुर्बल कर चुके हैं, जिनकी योगसाधाना परिपूर्णता को प्राप्त नहीं हुई है, जो साधना करते–करते मृत्यु को प्राप्त हुए हैं तथा अधिक मात्रा में जिनका चित्त एकाग्र हो चुका है।ऐसे उत्तम योगाधिकारियों को प्रारम्भ से योगाभ्यास करने की आवश्यकता नही होती। वे तो पूर्वकृत अभ्यास के ही अभ्यास और वैराग्य द्वारा पुष्ट करते हुए सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात योग को प्राप्त करते हैं जिनका चित्त समाहित नही होता वे साधक अभ्यास और वैराग्य का सेवन नही

कर सकते, जिनमें योगसाधना की दृढ़ इच्छा है किन्तु जिनका चित्त चंचल है उन्हें कुछ कठोर साधना की आवश्यकता है। ऐसे अधिकारी मध्य अधिकारी कहलाते हैं। उनके लिये क्रियायोग की आवश्यकता होती है। तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधाान में तीन उपाय क्रिया योग कहलाते हैं।[2]अध्म साधक आरूरूक्षु वह होता है जो विषय वासनाओं में फसा होने पर भी योगमार्ग में अग्रसर होने का इच्छुक होता है। अष्टांग मार्ग योग साधना में निरन्तर गृहस्थ इस कोटि में आता है।

2.0 उत्तम अधिकारी के लिए योग मार्ग –

उत्तम कोटि के योगसाधकों के लिए मुख्य उपाय अभ्यास और वैराग्य है किन्तु अकेले अभ्यास से और वैराग्य से चित्त का निरोध सम्भव नहीं है अपितु दोनों के सम्मिलित आचरण से ही वृत्तिनिरोध होता है। चित्त एक नदी के समान है जो पाप और पुण्य दोनों ही दिशाओं में बहती है। इसकी दो धारायें हैं एक धरा से विषयों का आगमन होता है।दूसरी धारा से विवेक का आगमन होता है किन्तु विषयों की धारा के वेग के कारण विवेक की धारा प्रायः बन्द रहती है। वैराग्य के द्वारा विषय का स्रोत बन्द कर दिया जाता है और अभ्यास के द्वारा विवेक का स्रोत खोल दिया जाता है। इस प्रकार दोनो के अनुष्ठान से वृत्ति निरोध हो जाता है।[3]

2.1 अभ्यास –स्थिति में प्रत्यन्न का नाम ही अभ्यास है। वृत्तिहीन चित्त की एकाग्रता स्थिति है तथा यत्न का अर्थ उस एकाग्रता के लिए मानसिक उत्साह और दृढतापूर्वक यमनियम आदि योगांगों का अनुष्ठान है। इस प्रकार वृत्तिहीन चित्त की एकाग्रता रूप जो प्रशान्तवाहिता स्थित है, उसके लिए मानसिक उत्साह और दृढ़ वीरता के साथ यम–नियम आदि का अनुष्ठान करना अभ्यास है।[4] विज्ञान भिक्षु के अनुसार हर्ष, शोक आदि विभिन्न तरंगो से रहित चित्त की एकाग्रता वृत्ति रूप धारा को स्थिति कहते हैं। वाचस्पति मिश्र के अनुसार स्थित सात्विक वृत्ति की प्रवाह रूप एकाग्रता है। अतः स्पष्ट कहा जा सकता है। स्थिति में वृत्तियों का सम्पूर्ण निरोध नहीं, बल्कि विघ्नकारी रजस और तमस वृत्तियों का निरोध समाविष्ट है। अभ्यास से चित्त की वृत्तियों का निरोधतभी सम्भव है जब अभ्यास दृढ़ हो। दृढ़ता के लिए तीन बातें आवश्यक हैं –दीर्घकाल, नैरूतर्य तथा सत्कार। दीर्घकाल का अर्थ है बहुत काल पर्यन्त अभ्यास किया जाये अर्थात् अनेक जन्म भी लग जाये किन्तु अभ्यास करने का सामर्थ्य चित्त में होना चाहिए। अभ्यास में नैरन्तर्य भी होना चाहिये। तेलधरावत् अविच्छिन्नरूप में किया गया अभ्यास ही फलवान् है। विषय वासनाओं के झंझावात से अभ्यास में जब व्यवधान आ जाता है तब अभ्यास दृढ़भूमि नही हो पाता।[5]

2.2 वैराग्य–लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार के विषयों में चित्त का तृष्णारहित हो जाना वैराग्य कहलाता है। स्रक्, चन्दन, वनिता अन्नपान आदि लौकिक विषय है तथा वेदबोधित पारलौकिक स्वर्गादि के अमृतपान, अप्सतसम्भोग आदि आनुश्रविक विषय हैं। इन दोनों ही प्रकार के विषयों में मुमुक्षु के चित्त का तृष्णा रहित हो जाना ही वैराग्य है।[6]वैराग्य दो प्रकार का होता है –

2.3 अपर वैराग्य – अपर वैराग्य लौकिक विषय धन, स्त्री, पुत्र आदि जिनकी प्राप्ति इस संसार में हो सकती है और अलौकिक विषय स्वर्ग आदि जो इस संसार में अप्राप्त है परंतु जो शास्त्रों द्वारा ज्ञात है जोकि प्रति होने वाला वैराग्य है। इसके चार भेद हैं–यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय

तथा वशीकार। चित्त के राग, द्वेषादि मलों की निवृत्ति के लिये मैत्र्यादिभावनाओं का अनुष्ठानरूप यत्न करना यतमान नामक वैराग्य है। इनसे कुछ मल तो नष्ट हो जाते हैं और कुछ शेष रह जाते हैं। अतः अवशिष्ट मलों को दूर करने का निश्चय करना व्यतिरेक वैराग्य है। जब चित्त मल तो निवृत्त हो जाये किन्तु कभी–कभी के सूक्ष्मरूप से मन को प्रवृत्त कराने के लिये मनरूप एकेन्द्रिय में स्थित हो जाते हैं। उस मन रूप एकेन्द्रिय में स्थित सूक्ष्ममल को निवृत्त करने का प्रयास एकेन्द्रिय वैराग्य है। मन सहित समस्त इन्द्रियां वश में हो जायें वशीकार वैराग्य है।[7]

2.4 परवैराग्य – प्रकृति तथा पुरूषविषयक भेदज्ञान के उदय होने से जो सत्वगुण के कार्यरूप विवेक ज्ञान में भी तृष्णा का अभाव है परवैराग्य कहलाता है।

3.0 मध्यम अधिकारी के लिए योग मार्ग –

मध्यम अधिकारी के लिए क्रियायोग का निरूपण किया गया है तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान क्रियायोग नहीं है अपितु क्रियायोग के साधन है किन्तु साधन और साध्य या कार्यकारण की अभेदविषक्षा में कार्य को भी कारण कह दिया जाता है। यहां भी तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग कह दिया गया है। इसमें क्रिया की अधिकता है इसलिये इसे क्रियायोग कहा जाता है।[8]

3.1 तप–'तपो द्वन्द्व सहनम्' अर्थात् द्वन्द्वों को सहन करना तप है। साधक को शुभ कार्यों को करने में जो भी विपत्तियाँ आती हैं, उन सभी विपत्तियों को सहन करके शुभ कर्मों को करना तप है, अर्थात्– यह भी कह सकते हैं कि शुभ कार्यों को करने में जो सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि उपस्थित होते हैं, इन सभी को प्रसन्नता पूर्वक सहन करते हुए अपने जीवन के लक्ष्य को सिद्ध करना तप है।[9]महर्षि पाणिनी ने तप शब्द का अर्थ धातुपाठ में संताप, ऐश्वर्य एवं दाह किया है।[10] तप की महिमा अपार है। तप का अर्थ तपाना है। हर वस्तु तपाने पर निखर जाती है। शरीर, मन, इन्द्रियाँ तथा प्राणों को विधिपूर्वक वश में करना तप कहलाता है, व्यासभाष्य में भूख–प्यास, सुख–दुःख, मान–अपमान, लाभ–हानि, जय–पराजय आदि द्वन्द्वों को सहना तप कहलाता है।[11]मनुस्मृति के अनुसार तप के विषय में कहा है कि जिसका करना दुष्कर है, जिसका मिलना दुष्कर है तथा जिसका ज्ञान लाभ करना दुष्कर है, वह तप के द्वारा प्राप्त हो सकती है। दुष्कर कार्यों के पूर्ण करने का मुख्य कारण तप ही है।[12]इस प्रकार साधक तप से शरीर, इन्द्रियों और आत्मा को निर्मल करके परम पिता परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

3.2 स्वाध्याय–शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से स्व+अध्याय अर्थात् अपना अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। अतः साधक को सदैव अपनी जाँच करके यह जानते रहना चाहिए कि उसमें किन–किन दोषों की कमी या वृद्धि अर्थात् बढ़ोतरी हो रही है। अपने दोषों व कमियों को जानकर ही हम उन्हें दूर करने में समर्थ हो सकते हैं। वेदादि मोक्ष ग्रन्थों के पठन, श्रवण तथा मनन करने को स्वाध्याय कहते हैं। ईश्वर के मुख्य नाम 'ओउम्' का अर्थ सहित जप करने का नाम भी स्वाध्याय है।व्यासभाष्य में स्वाध्याय को समझाते हुए कहा गया है कि उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि मोक्षोपयोगी शास्त्रों का अध्ययन तथा ओंकार का जप स्वाध्याय कहलाता है।[13]श्रीमद्भगवद्गीता में स्वाध्याय के बारे में कहा है कि वेदमन्त्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्राविधि से नियम यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ओउम्' इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती है।[14] गीता के एक श्लोक में कहा है कि

ओंकार ही सच्चिदानन्द धन परमात्मा का नाम है।[15]मनुस्मृति में स्वाध्याय के विषय में कहा है कि स्वाध्याय का प्रथम साध्य दैवी वाणी 'वेद' है। मनुस्मृति में वेद को अपौरुषेय, अप्रमेय कहा गया है। वेद सबका चक्षु है।[16] पितृ–संज्ञक रक्षक और पालक पिता आदि, विद्वान् और अन्य मनुष्यों का वेद मार्गदर्शक है और वह अशत्तफ अर्थात् जिसे कोई पुरुष नहीं बना सकता, इसलिए अपौरुषेय है तथा अनंत सत्यविधाओं से युत्तफ है, ऐसी निश्चित मान्यता है। अतः वेद का स्वाध्याय करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।तैत्तिरीयोपनिषद् में स्वाध्याय के विषय में कहा है कि स्वाध्याय के साथ प्रवचन को भी जोड़कर इन दोनों को करना आवश्यक कर्त्तव्य बतलाया गया है।[17] इसी उपनिषद् में एक अन्य स्थान पर कहा है कि स्वाध्याय में प्रमाद मत करो।[18] साधक को चाहिए कि जब भी उसे अवकाश मिले वह मोक्ष शास्त्रों का अवश्य अध्ययन करें।अतः अपने इष्टदेव के नाम का जप एवं स्वरूप,गुण, प्रभाव और महिमा आदि के पठन–पाठन, श्रवण–मनन रूप स्वाध्याय से इष्ट देव के साक्षात् दर्शन हो जाते हैं।

3.3 ईश्वर प्रणिधान–ईश्वर प्रणिधान दो शब्दों से मिलकर बना है– ईश्वर व प्रणिधान। ईश्वर का अर्थ है, पुरुषविशेष, प्रणिधान का अर्थ है, दे देना। अर्थात् पुरुष विशेष को सर्वस्व दे देना। ईश्वर का निरन्तर चिन्तन, मनन और निदिध्यासन ही ईश्वर प्रणिधान है। साधक में ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव रहना ईश्वर प्रणिधान है।व्यास भाष्य में ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप सब कर्मो को ईश्वर में अर्पित कर देना और कर्मों के फलों की इच्छा भी न करना ईश्वर प्रणिधान है।[19]श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि 'हे अर्जुन' जो कार्य तू करता है, जो खाता है, जो तू होम करता है, जो तू दान देता है, जो तू तपता है, वह सब मुझे अर्पण कर दे।[20] तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसत्तिफ न हो।[21]योगदर्शन में कहा गया है कि वह परमेश्वर सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए ब्रह्मादिकों का गुरु है, क्योंकि वह काल से परिच्छिन्न नहीं किन्तु अपरिच्छिन्न है।[22]इस प्रकार नियमों के विषय में हम कह सकते हैं कि साधना के अनुकूल वृत्तियों का प्रवाह और प्रतिकूल वृत्तियों का त्याग ही नियम है, जिसके द्वारा साधक अपने चित्त का इतना विस्तार कर लेता है कि वह देश काल की सीमा से ऊपर उठकर परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध बना लेता है।

4.0 अधम अधिकारी के लिए योग मार्ग –

महर्षि पतंजलि ने मन्द अधिकारी के लिए अष्टांग योग का निरूपण किया गया है यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ है।[23] जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

4.1 यम

पूर्वोत्तफ योग के आठ अंगों में प्रथम अंग यम है। 'यमु' बान्धने धातु में 'घ×ा्' प्रत्यय लगाने पर यम शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है, बांधने वाला या नियन्त्रण करने वाला। ये यम पाँच है। यथाअहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम है।[24] चूँकि अहिंसयादि यम मनुष्यों को नियन्त्रित करते हैं, उसके अशुभ व्यवहारों पर रोक लगाते हैं, इसलिए इन्हें यम कहा जाता है। इन अहिंसादि यमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

- **अहिंसा–**सब प्रकार के सर्वकाल में समस्त प्राणियों से हिंसा न करना अहिंसा कहा गया है।
- **सत्य–**वाणी और मन की यथार्थता को सत्य कहते हैं।

- **अस्तेय**–स्तेय का अर्थ है, चोरी तथा स्तेय के अभाव को अस्तेय कहते हैं।
- **ब्रह्मचर्य**–'ब्रह्म' अर्थात् ईश्वर एवं 'चर्य' अर्थात् चलना अर्थात् ईश्वर के रास्ते पर चलना ब्रह्मचर्य है, तथा वीर्य की रक्षा करना भी ब्रह्मचर्य कहलाता है।
- **अपरिग्रह**–विषयों का संग्रह न करना अपरिग्रह है।

4.2 नियम

योग दर्शन का दूसरा एवं महत्वपूर्ण अंग है नियम। यम और नियम में केवल 'नि' उपसर्ग का अन्तर है। 'नि' उपसर्ग निःशेष का वाचक है। नियम के विषय में बताते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है कि–

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान, ये पाँच नियम है।[25] जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

- **शौच**–शौच अर्थात् शुद्धि करना। शुद्धि दो प्रकार की है, बाह्य शुद्धि एवं आन्तरिक शुद्धि।
- **संतोष**–जो भोग साधन निकट विद्यमान है, उन पदार्थों से अधिक तथा अनुपयोगी अन्य पदार्थों के ग्रहण की इच्छा का न होना संतोष है।
- **तप**–क्षुधा–पिपासा, शीत–ऊष्ण, खड़ा होना और बैठना आदि द्वन्द्वों को सहना तप है।
- **स्वाध्याय**–उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि मोक्षोपयोगी शास्त्रों का अध्ययन तथा ओंकार का जप स्वाध्याय कहलाता है।
- **ईश्वरप्रणिधान**–परमगुरू परमेश्वर में सर्वक्रियाओं को अर्पित कर देना ईश्वरप्रणिधान है।

4.3 आसन

अष्टांग योग का तीसरा अंग है, आसन। योग साधना के लिए इसका अभ्यास अनिवार्य रूप से बताया गया है। आसन के विषय में बताते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है किस्थिर होकर सुखपूर्वक बैठने को आसन कहा जाता है।[26] पद्मासन आदि आसनों में से जिसके द्वारा स्थिरता तथा सुख की प्राप्ति हो उसी आसन का उपयोग साधक को करना चाहिये। जिनमें से कुछ आसनों का विवरण भाष्यकार कर रहे हैं, जैसे– पद्मासन, वीर, भद्र, स्वस्तिकासन आदि। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

- **पद्मासन**–बांयी जंघा के ऊपर दाहिने पैर को रखना एवं दाहिने जंघा के ऊपर बांये पैर को रखकर बैठने की स्थिति को पद्मासन कहते हैं।
- **वीरासन**–एक पैर को पृथ्वी पर रखना, दूसरे पैर के घुटने को मोड़कर उसके ऊपर रखते हुए स्थिर रहना वीरासन है।
- **भद्रासन**–दोनों पैरों के तलवों को अण्डकोष के पास रखना तथा दोनों हाथों से पैरों को बाँधकर रखना भद्रासन है।
- **स्वस्तिकासन**–बाये पैर को मोड़कर दाहिनी जंघा और उरू के बीच में रखना तथा दाहिने पैर को मोड़कर बांयी जंघा और उरू के बीच में रखकर सीधे बैठना स्वस्तिकासन कहलाता है।

4.4 प्राणायाम

प्राणायाम अष्टांग योग का चतुर्थ अंग है। समाधि तक पहुँचने के लिए प्राणायाम की सिद्धि अनिवार्य है। चित्त की चंचलता का निरोधक सबसे अधिक प्राणायाम ही है। प्राणायाम के विषय में महर्षि पतंजलि कहते हैं किआसन की सिद्धि होने पर श्वास और प्रश्वास की गति का स्थिर हो जाना प्राणायाम कहलाता है।[27] यह प्राणायाम चार प्रकार का होता है।

- **बाह्यवृत्ति**–जिस प्राणायाम में प्रश्वास द्वारा अर्थात् अन्दर की वायु को बाहर निकालकर प्राण की स्वाभाविक गति की विच्छेद किया जाता है, वह रेचक अर्थात् बाह्यवृत्ति कहा जाता है।
- **आभ्यन्तरवृत्ति** –जब बाहर की वायु को अन्दर खींचकर प्राण की स्वाभाविक गति का विच्छेद किया जाता है, वह पूरक अर्थात् आभ्यन्तरवृत्ति कहा जाता है।
- **स्तम्भवृत्ति** –जब श्वास तथा प्रश्वास दोनों प्रकार की गति का अभाव होता है, वह कुम्भक अर्थात् स्तम्भवृत्ति कहलाता है।
- **बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी** – श्वास को पूरक करके तब तक रोका जाए, जब तक प्राण बाहर निकलने को आतुर न हो जाए तथा बाहर निकालकर तब तक रोका जाए, जब तक अन्दर जाने को व्याकुल न हो जाए। विधिपूर्वक इसका अभ्यास करना चाहिए।[28]

4.5 प्रत्याहार

प्रत्याहार अष्टांग योग का पांचवा अंग है। प्रत्याहार का अभिप्राय है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों का अपने–अपने विषयों से सम्बन्ध छूट जाने पर चित्त के अनुरूप हो जाना। यम, नियम प्राणायामादि के प्रभाव से चित्त जब बाहर के विषयों से विरक्त होकर समाधिस्थ होने लगता है, तब इन्द्रियाँ भी अर्न्तमुखी होकर उस जैसा अनुकरण करने लगती है और चित्त के निरूद्ध होने पर स्वयं भी निरूद्ध हो जाती है, यही उनका प्रत्याहार है। महर्षि पतंजलि प्रत्याहार के विषय में कहते हैं किइन्द्रियों का अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर, जो चित्त के स्वरूप में तदाकर–सा हो जाता है, वह प्रत्याहार है।[29]इस अवस्था में चित्त तो बाह्य विषयों के विमुत्तफ होकर आत्मतत्त्व के अभिमुख होता है, पर इन्द्रियाँ केवल बाह्य विषयों से विमुख होती है। चित्त के समान आत्मत्व के अभिमुख नहीं होता।

4.6 धारणा

उपर्युक्त यम, नियमादि पाँच अंग योग के बाह्य अंग कहे जाते हैं तथा अन्य तीन अंग धारणा, ध्यान एवं समाधि योग के आभ्यांतर अंग कहे गये हैं। अष्टांग योग में षष्ट अंग के रूप में धाारणा का वर्णन है, जिसका अर्थ है, धारण करना। अंतरंग का प्रथम साधन होने से साधक इसमें सफलता प्राप्त करने के बाद ही ध्यान तथा समाधि की स्थिति में पहुँचता है। धारणा के विषय में वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं किशरीर के बाहर अथवा भीतर कहीं पर भी किसी एक क्षेत्र में चित्त को स्थिर करना ही धारणा कहलाता है।[30]जब चित्त और इन्द्रियाँ बहिरंगों द्वारा अर्न्तमुखी हो जाए तो शरीर के अन्तर्गत् अथवा बाहर किसी स्थान विशेष पर चित्त को बांधने का प्रयास करना धारणा है।

4.7 ध्यान

अष्टांग योग का सातवां एवं अन्तरंग का दूसरा साधन है, ध्यान। धारणा के अभ्यास को यदि निरन्तर रखा जाए तो वही धारणा एक दिन ध्यान बन जाती है। धारणा का समय यदि पाँच घटिका है, तो ध्यान का समय साठ घटिका होना चाहिए। महर्षि पतंजलि ध्यान का वर्णन करते हुए कहते हैं किचित्त को जहाँ पर केन्द्रित किया जाए, उसी में चित्तवृत्ति का एकाग्र होना ध्यान कहलाता है।[31] जिस स्थान में ध्येय के रूप में धारणा द्वारा चित्त वृत्ति को लगाया हो उसी ध्येय रूप आलम्बन में चित्तवृत्ति यदि एकाग्रता को प्राप्त हो वह ध्यान कहलाता है। एकाग्रता का अर्थ है कि विजातीय वृत्ति से रहित सजातीय वृत्ति का प्रवाह निरन्तर चलता रहे तो वह प्रवाह ही ध्यान कहलाता है।

4.8 समाधि

समाधिअष्टांग योग का आठवां एवं अति महत्वपूर्ण अंग है। ध्यान की पूर्णता होने पर अगली स्थिति समाधि होती है। समाधि का समय धारणा और ध्यान से अध्कि होता है। इन तीनों का अनुपात क्रमश 5:60:120 नहीं होता है। महर्षि पतंजलि समाधि का स्वरूप बताते हुए कहते हैं किवही ध्यान जब ध्येयमात्रा का प्रकाशक तथा अपने ध्येयाकार रूप से रहित सा हो जाता है, तब वह समाधि कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार यही समाधि दो प्रकार की होती है–

1. सम्प्रज्ञात समाधि
2. असम्प्रज्ञात समाधि

1. **सम्प्रज्ञात समाधि–**यह चार प्रकार की होती है–

- **वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि–**स्थूल पंचमहाभूत अथवा पंचमहाभूतों से निर्मित चतुर्भुजादि भगवत्प्रतिमा वितर्क कहलाती है। इन भूतों में अथवा भौतिक प्रतिमादि स्थूल ग्राह्य पदार्थों में जो समाधि की जाती है, उसे वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। वितर्कानुगत समाधि भी दो प्रकार की होती है– सवितर्क, निर्वितर्क।
- **विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि–**पन्चतन्मात्रा को विचार कहा जाता है। ये महाभूतों के सूक्ष्म रूप है, इनको विषय बनाकर जो भावना की जाती है, वह विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है। विचारानुगत समाधि भी दो प्रकार की होती है– सविचार, निर्विचार।
- **आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि–**मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण कहा जाता है। स्थूल और सूक्ष्म महाभतों की संज्ञा ग्राह्य थी। इन्द्रियों का नाम ग्रहण है। ये इन्द्रियाँ चूँकि सत्त्व प्रधन होने से प्रकाशक है, इसलिये इन्हें आनन्द भी कहा जाता हैं। इनमें जो भावना की जाती है, उसे आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।
- **अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि–**अहंकार, बुद्धि, प्रकृति तथा पुरुष ये चारों ग्रहीता कहे जाते हैं। इन्हीं का नाम अस्मिता भी है। इन चारों को ध्येय बनाकर जब भावना की जाती है, तो यह भावना अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है।

2. **असम्प्रज्ञात समाधि–**यह दो प्रकार की होती है–

- **भव प्रत्यय–**विदेह तथा प्रकृतिलय योगियों का जो संस्कारशेषरूप वृत्तिनिरोध है, वह भवप्रत्यय है।

- **उपायप्रत्यय**–जब योगी केवल निर्गुण आत्मतत्त्व में श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक वृत्तिनिरोध करता है तो उसका संस्कारशेष रूप वह वृत्तिनिरोध असम्प्रज्ञात समाधि कहलाता है।[32]

5.0 निष्कर्ष – महर्षि पंतजलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है। अन्तःकरण की वृत्तियां योगक्रिया द्वारा क्रमशः शान्त होते–होते जब पूर्णतः शान्त हो जाती हैं उस अवस्था का नाम योगयुक्त अवस्था है। महषि पतंजलि ने इस चित्तवृत्तिनिरोध के लिए तीन प्रकार के साधनों का निर्देश दिया है। ये तीन साधन– 1. अभ्यास एवं वैराग्य 2. क्रियोयोग और 3. अष्टांगयोग। इनमें से 'अभ्यास और वैराग्य' उत्तम अधिकारियों के लिए 'क्रियायोग' मध्यम

अधिकाकारियों के लिए तथा 'अष्टांगयोग' अधeमk अधिकारियों के लिए हैं। क्रियायोग के अन्तर्गत तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान, इन तीन साधनों का विधान है। अष्टांगयोग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि, इन आठ योगांगो की चर्चा है। ये आठ अंग योग की आठ सढियां हैं जिन पर योगशास्त्र का सम्पूर्ण भवन खड़ा है।इन सभी मार्गों के पालन से साधक ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है अर्थात् साधक स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर हो जाता है। वह भौतिकवादी दृष्टिकोण को समाप्त कर आत्म तत्व को प्राप्त करता है जिससे साधक कैवल्य को प्राप्त कर लेता है। अतः साधकों को उपर्युक्त कहे गए चित्तवृत्ति के उपायों का श्रद्धा पूर्वक सांगोपान करना चाहिए।

6.0 संदर्भ ग्रन्थ सूचि

1 योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। योगसूत्र 1/2
2 तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। योगसूत्र 2/1
3 अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योगसूत्र 1/12
4 तत्र स्थितौ यत्न अभ्यास : । योगसूत्र 1/13
5 सतु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमि : । योगसूत्र 1/14
6 दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम्।। योगसूत्र 1/15
7 तत्परं पुरूषख्यातेर्गुणैवैतृष्ण्यम् । योगसूत्र 1/16
8 तपः स्वााध्यायेश्वरप्रणिधनानि क्रियायोगः। योगसूत्र 2/1
9 स्वामी सत्यपति परिव्राजक – सरल योग से ई. साक्षा, पृष्ठ 67
10 तप संतापे (भ्वा0 प0)तप ऐश्वर्ये (दिवादि आ0), तपदाहेचुरादि।
11 तपो द्वन्द्वसहनम्।। व्यासभाष्य– 2/32
12 यद्दुष्करं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।। मनुस्मृति–11/238
13 स्वाध्यायो मोक्षशास्त्रामध्ययनं प्रणवजपो वा। व्यासभाष्य–2/32
14 तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधनोत्तफाः सततं ब्रह्मवादिनाम्।। गीता – 17/24
15 ऊँ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिाविधः स्मृतः। गीता – 17/23
16 वेदश्चक्षुः सनातनम्। मनुस्मृति– 12/94
17 तं च स्वाध्यायप्रवचने च। (तैत्तिरीयो)– अथ शीक्षावल्ली, नवम अनुवाद – 1

18 स्वाध्यायान्मा प्रमदः। (तैत्तिरीयो)– अथ शीक्षावल्ली, एकादश अनुवाक – 1
19 तस्मिन् परम गुरौ सर्वकर्मार्पणम्। व्यासभाष्य – 2/32
20 यत्करोषि यद श्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। गीता – 9/27
21 कर्मण्येवाधिकारस्ते मा पफलेषु कदाचन।
मा कर्मपफलहेतुर्भूर्मा ते सघौस्त्वकर्मणि।। गीता – 2/47
22 पूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात्।। योगसूत्र– 1/26
23 यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधरणाध्यानसमाध्योष्टावघौंनि।। योगसूत्र – 2/29
24 अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।। योगसूत्र – 2/30
25 शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।। योगसूत्र – 2/32
26 स्थिरसुखमासनम्। योगसूत्र – 2/46
27 तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। योगसूत्र – 2/49
28 बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः। योगसूत्र – 2/51
29 स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।। योगसूत्र – 2/54
30 देशबन्धश्चितस्य धारणा। योगसूत्र – 3/1
31 तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।। योगसूत्र – 3/2
32 तदेवार्थमात्रानिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। योगसूत्र – 3/3